International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 06-04-2025, Accepted: 07-05-2025, Published: 22-05-2025
Volume 7, Issue 1, 2025, Page No. 17-18

डॉ. बच्चन सिंह का साहित्येतिहास–विमर्श

डॉ. जयंती
अतिथि अध्यापिका, हिन्दी विभाग, सी. के. एम. शासकीय आर्ट्स एवं साईंस महाविद्यालय, वरंगल, तेलंगाना, भारत

सारांश
यह आलेख हिन्दी साहित्येतिहास की अवधारणा, उसकी प्रासंगिकता एवं डॉ. बच्चन सिंह के साहित्येतिहास–दर्शन पर केंद्रित है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथन के आलोक में यह स्पष्ट किया गया है कि साहित्येतिहास केवल ग्रंथों का विवरण नहीं, बल्कि समाज की सांस्कृतिक चेतना और विकास यात्रा का दस्तावेज होता है। डॉ. बच्चन सिंह साहित्य को एक सांस्कृतिक उत्पादन मानते हुए साहित्य और इतिहास के द्वंदात्मक संबंधों को चिन्हित करते हैं। उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल और द्विवेदी जी की इतिहास–दृष्टियों की सीमाओं और अंतर्विरोधों का विश्लेषण कर 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' के माध्यम से एक वस्तुनिष्ठ, आलोचनात्मक और परिवर्तनशील साहित्येतिहास–लेखन का मार्ग प्रशस्त किया है। उनके अनुसार साहित्येतिहास लेखन एक गतिशील प्रक्रिया है जो समय के साथ बदलती चेतना और सामाजिक संदर्भों को आत्मसात करती है। जायसी, कबीर और मुक्तिबोध की रचनाओं पर उनकी विश्लेषणात्मक दृष्टि उनकी आलोचक–संवेदनशीलता को दर्शाती है। समग्रतः यह विमर्श हिन्दी साहित्येतिहास को एक नवबौद्धिक अनुशासन के रूप में प्रस्तुत करता है, जो अतीत और वर्तमान के बीच संवाद की प्रक्रिया को पुनर्परिभाषित करता है।

मूल शब्दः हिन्दी साहित्येतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, इतिहास–दृष्टि, साहित्य और समाज, द्वंदात्मक विश्लेषण, नवबौद्धिक अनुशासन

साहित्येतिहास केवल रचनाओं और रचनाकारों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का दस्तावेज नहीं, बल्कि समाज की सांस्कृतिक चेतना, वैचारिक प्रवृत्तियों और ऐतिहासिक परिस्थितियों का प्रतिबिंब होता है।[1] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, यह "जीवंत समाज की विकास–कथा" है, जो काल–प्रवाह में बहती हुई 'प्राणधारा' की तरह साहित्य में प्रकट होती है।[2] डॉ. बच्चन सिंह इसी दृष्टिकोण को आगे बढ़ाते हुए साहित्येतिहास को एक गतिशील, आलोचनात्मक और वस्तुनिष्ठ अनुशासन मानते हैं, जो न केवल अतीत को समझने का माध्यम है बल्कि समकालीन साहित्य की गहरी पड़ताल का औजार भी है।[3] उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं द्विवेदी जी की इतिहास–दृष्टियों के अंतर्विरोधों का विश्लेषण करते हुए साहित्येतिहास लेखन की एक नई वैचारिक धारा प्रस्तुत की है।[4] उनका 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' परंपरागत मॉडल्स को चुनौती देता हुआ, एक नये ऐतिहासिक–बौद्धिक दृष्टिकोण की मिसाल बनकर उभरता है।[5] इस प्रस्तावना में हम डॉ. बच्चन सिंह के साहित्येतिहास विषयक दृष्टिकोण, उनके आलोचनात्मक विवेक और नवजागरण की अवधारणा की पड़ताल करेंगे।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि – "साहित्य का इतिहास ग्रंथों और ग्रंथ कारों के उद्भव और विलय की कहानी नहीं है, वह काल स्रोत में बहे आते हुए जीवंत समाज की विकास–कथा है। ग्रंथकर और ग्रंथ उस प्राणधारा की ओर सिर्फ इशारा करते हैं। वे ही मुख्य नहीं है। मुख्य है वह प्राणधारा जो नाना परिस्थितियों से गुजरती हुई आज हमारे भीतर अपने–आपको प्रकाशित कर रही है। साहित्य के इतिहास में हम अपने आप को पढ़ने का सूत्र पाते हैं"।[1]

यह सर्वविदित है कि दुनिया में साहित्येतिहास को यदि एक ओर अंतर्विरोधपूर्ण असंगत विषय, साहित्य एवं इतिहास की धारणाओं का अनमेल मिश्रण तथा साहित्यानुशीलन की एक बदनाम पद्धति बताने वाले कुछ लोग हुए हैं, तो दूसरी ओर ऐसे विचारकों की भी कमी नहीं रही है जिनका कहना है कि – "आज के युग में साहित्य का इतिहास एक बौद्धिक अनुशासन के रूप में ही नहीं बल्कि साहित्य की रक्षा के लिए भी अत्यावश्यक है।"[2]

आज यह बताने की जरूरत नहीं है कि जो लोग साहित्येतिहास की संकल्पना का विरोध करते रहे हैं वह हमेशा इतिहास विरोधी व समाज–निरपेक्ष विचारधाराओं से नाभि–नाल बद्ध रहे हैं। सच तो यह है कि इतिहास–बोध के बगैर अतीत की रचनाओं की प्रासंगिकता ही नहीं बल्कि, समकालीन रचनाओं की सच्ची आलोचना एवं सूक्ष्म परिशंसा भी असंभव है। प्रसंगत् ब्रेष्ट लिखते हैं दृ "जितना ही हम अपने समय के अधिक से अधिक उपयुक्त नये प्रकार के आस्वाद के प्रति अपने को अर्पित करते हैं, पुराने नाटकों का हमारा आनंद उतना ही बढ़ता जाता है। उस लक्ष्य के लिए हमें 'इतिहास– बोध' को सच्चे इंद्रिय आनंद में विकसित करने की आवश्यकता है। (यह आवश्यकता नये नाटकों के आस्वाद के लिए भी है)"।[3]

किसी भी साहित्येतिहासकार की इतिहास–दृष्टि को रेखांकित करने के लिए सर्वप्रथम यह पता लगाना जरूरी है कि साहित्य तथा इतिहास के बारे में उसकी धारणा क्या है? इस दृष्टि से डॉ. बच्चन सिंह के साहित्येतिहास विषयक विमर्श पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि उनके लिए साहित्य स्वयं एक सांस्कृतिक उत्पादन है जिसके अपने आंतरिक नियम और अनुशासन हैं।

बच्चन जी की धारणा रहे हैं कि साहित्येतिहास–लेखन वस्तुतः अपने आप में एक गुरु गंभीर कार्य है। स्पष्ट ही उन्होंने साहित्य और इतिहास के द्वंदात्मक संबंधों को मार्क्सवादी चिंतकों द्वारा बहुत कुछ विकसित किए गए सूत्रों के माध्यम से समझाते हुए साहित्येतिहास लेखन का एक वस्तुनिष्ठ नमूना पेश किया है। कहना ना होगा कि साहित्य के इतिहास को साहित्य भी होना चाहिए और इतिहास भी। डॉ. बच्चन सिंह के 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' को इसके मॉडल के रूप में पेश किया जा सकता है।

डॉ. बच्चन सिंह हिन्दी में साहित्येतिहास–दर्शन के क्षेत्र में काम करने वाले विद्वान आलोचक डॉ. मैनेजर पांडेय की उस स्थापना से बिल्कुल असहमत है कि – "आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि जहाँ भक्ति–काल द्वारा निर्मित हुई, वहीं साहित्यक दृष्टिकोण छायावाद द्वारा"।[4]

इतिहास–दृष्टि एक काल की रचनाओं द्वारा निर्मित हो और साहित्यक दृष्टि दूसरे काल की रचनाओं द्वारा हो यह स्वयं अनैतिहासिक है। उन्हें आचार्य शुक्ल के इतिहास में एक बड़ी असंगति यह लगती है कि वहाँ हर काल में फुटकल खाता

खोलने की पेशकश है। इसी प्रकार उनके अनुसार शुक्ल जी द्वारा किया गया आधुनिक काल का उत्थानधर्मी वर्गीकरण इसलिए असंगत है कि उसमें एक ही उत्थान के गद्य और पद्य में प्रवृत्तिगत एकरूपता नहीं दिखाई गई। चूँकि हिन्दी साहित्य के ज्यादातर इतिहासकार 'मॉडल' के रूप में मुख्यतः शुक्लजी के 'इतिहास' को ही लेते रहे हैं इसलिए डॉ. सिंह को यह जरूरी लगता है कि उसकी असंगतियों पर भी एक नजर जरूर डाली जाय।

डॉ. सिंह साहित्येतिहास–लेखन को एक प्रवाहमान और गत्यात्मक प्रक्रिया मानते हैं। जिसमें हर नये इतिहासकार को इतिहास–लेखन के पुराने ढाँचे से छेड़छाड़ शुरू करनी पड़ती है। दूसरे शब्दों में नए इतिहास से पुराने के प्रति अंधश्रद्धा और यथास्थितिवाद को चोट पहुँचती है, जाने–आनजाने वर्ग–वर्ण–चेतना को धक्का लगता है। नया या दूसरा इतिहास इसी कोख से पैदा होता है। स्पष्ट ही 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' लिखने के क्रम में उन्होंने शुक्लजी के साहित्येतिहास के साथ–साथ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्येतिहास को भी खँगालने का काम किया है।

हम जानते हैं कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इतिहास लेखन में अन्य कारणों की अपेक्षा 'भारतीय चिंता के अटूट प्रवाह' को बहुत अधिक अहमियत देते हैं। इस संदर्भ में डॉ. बच्चन सिंह ने सवाल उठाया कि "भारतीय चिंता का अविच्छिन्न प्रवाह कहाँ जा रहा है? इसका उद्देश्य क्या है? क्या यह निरपेक्ष प्रक्रिया है? इसे वे मनुष्य को निरंतर विकासशील 'जययात्रा' कहते हैं। यही पशुता के ऊपर मनुष्यता की विजय है और यही है 'सामाजिक मंगल' का विधान। बच्चन के सामने जो दूसरा सवाल आता है वह यह कि अपने प्रत्ययों को व्यावहारिक रूप देने के लिए द्विवेदी जी ने कौन–सी प्रणाली या सारणि अपनायी? साहित्येतिहास के संदर्भ में वह किन सांस्कृतिक उपादानों और साहित्य के वस्तु–रूपों को चुनते हैं जो उनके साहित्येतिहास को रुपाकार देते हैं। डॉ. बच्चन सिंह की धारणा है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इतिहास–लेखन में अधोगति को अस्वाभाविक और जाति की स्वाभाविक चेतना को विकासोन्मुखी मानते हैं। साहित्येतिहास के संदर्भ में द्विवेदी जी धर्म–दर्शन की चिंता से लोक चिंता की माप करने के बजाय लोक चिंता की अपेक्षा में धर्म–दर्शन की चिंता को देखते हैं।

सच तो यह है कि डॉ. बच्चन सिंह ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्येतिहास में निहित अंतर्विरोध का गहराई से अध्ययन करते हुए साहित्येतिहास–लेखन एवं साहित्येतिहास–दर्शन का नया मार्ग अन्वेषित करने की कोशिश की है।

डॉ. बच्चन सिंह ने साहित्येतिहास से गुजरते हुए यह महसूस किया जा सकता है कि वह जहाँ एक ओर इतिहास– धर्मा आलोचक है तो दूसरी ओर साहित्येतिहासकार के रूप में उनकी आलोचनात्मक चेतना अत्यंत प्रखर है। साहित्येतिहास लेखन के क्रम में उनका समीक्षक रूप किस तरह उभरा है, इसे दो उदाहरणों के द्वारा समझा जा सकता है। मलिक मोहम्मद जायसी के 'पद्मावत' की खूबियों पर रोशनी डालते हुए 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' में वह लिखते हैं कि जायसी में मृत्युबोध की त्रासद अंतर्दृष्टि है। पद्मावत का प्रतिपाद्य पद्मिनी का सती होना नहीं है। वह मृत्यु बोध तक ले जाने का मार्ग है पर यह मृत्यु बोध एक ओर भौतिक है तो दूसरी ओर आध्यात्मिक। अन्य संतों और भक्तों का मृत्युबोध उपदेशमूलक और निवृत्यात्मक है, उनके बोध के पीछे जीवन का दबाव नहीं है। सभी भक्त मौत के उस पार देखना चाहते हैं किंतु जायसी उसे इसी पार देखते हैं। "मानुस प्रेम भयहु बैकुंठी, नाहिन काह छार भई मूँठी"।[5]

मनुष्य का प्रेम ही स्वर्गीय तत्व है। जायसी ईश्वर के प्रति प्रेम पर जोर नहीं देते, क्योंकि बैकुंठी प्रेम तो मनुष्य का मनुष्य के प्रति प्रेम है। बच्चन जी का कहना है कि जायसी की यह प्रेमदृष्टि उस समय के इतिहास की माँग (हिंदुओं–तुर्कों के बीच प्रेम की स्थापना की माँग) के तहत विकसित हुई थी।

साहित्येतिहास के जिस काल खंड में कबीर, सूर, तुलसी, जायसी जैसे महाकवि हुए हो, उसे डॉ. बच्चन सिंह मध्यकाल के नाम से अभिहित करना नहीं चाहते क्योंकि 'मध्यकाल' जकड़ी हुई मनोवृति का सूचक है। हम जानते हैं कि मध्यकाल को उनके पूर्व द्विवेदी जी ने जकड़ी हुई मनोवृति का सूचक माना था। प्रसंगात् डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है दृ "भक्तिकाल भक्तिकाल है, मध्यकाल नहीं–––– अनेक अर्थों में यह नवजागरण काल है प्रथम नवजागरण"।[6]

डॉ. बच्चन सिंह जब मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता 'अंधेरे में' पर टिप्पणी करते हैं तो उनका प्रखर आलोचक रूप स्वतः सामने आ जाता है– "न तो इसमें अस्मिता की खोज है और न विलय। यदि अस्मिता को लेकर ही विचार करना है तो मुक्तिबोध की शब्दावली में इसे 'अस्मिता का विकास' कहा जा सकता है। खंडित व्यक्तित्व के दो भागों में एक द्वंदात्मक संबंध है। विकास की दिशा इसी से निर्धारित होती है, वह दिशा है– आत्म संभव परम अभिव्यक्ति, द्वंद्व का प्रथम पक्ष दहशत, तानाशाही का टेरर, बुद्धिजीवी की कायरता आदि है तो दूसरा पक्ष रक्त लोक स्नात पुरुष, कोई वह ज्ञान परम अभिव्यक्ति आदि है। इन दोनों के टकराहट में ही अस्मिता पूर्ण अवस्था तक पहुँची"।[7]

बच्चन सिंह का कहना है कि – "शुक्ल जी ने एक ओर बिहारी के दोहे को हिन्दी साहित्य का रत्न माना है, दूसरी ओर हाथीदाँत पर कढ़े बेलबूटे। इस अंतर्विरोध के मूल में बिहारी की प्रसिद्ध और शुक्ल की अपनी अभिरुचि का अंतर्विरोध है।

रीतिकाल के कवियों को रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त के रूप में बाँट कर देखने के बजाय बच्चन सिंह उन्हें रितिकाव्य, मुक्त रितिकाव्य और रीतीतर काव्य के कवि के रूप में विभाजित कर देखना ज्यादा सही समझते हैं।

हिन्दी साहित्येतिहास के आधुनिक काल को डॉ. सिंह ने छोटे–छोटे दो युगों में बाँट कर देखा है– स्वच्छंदतावाद–युग तथा उत्तरस्वच्छंदतावाद–युग।

इतिहास को कदाचित पारिभाषित करते हुए ई. एच. कार ने लिखा है कि "इतिहास, इतिहासकार तथा उसके तथ्यों के बीच होने वाली अंतः क्रिया की एक निरंतर प्रक्रिया तथा वर्तमान एवं अतीत के बीच एक अविच्छिन्न संवाद है"।[8]

वस्तुतः सच्चा साहित्येतिहासकार अतीत की रचनाओं को अपनी पूरी वर्तमान के साथ जाँच–परख कर उनसे संवाद करता है तथा समय के साथ साहित्य के विकास की प्रक्रियाओं में आए बदलाव को रेखांकित करते हुए उनमें निहित रचनात्मक संभावनाओं की ओर भी इंगित करने की कोशिश करता है। अपनी कुछ सीमाओं के बावजूद इतिहास के अंत की उद्घोषणा के इस तथाकथित उत्तर–आधुनिक युग में बच्चन सिंह का साहित्येतिहास–विमर्श इस दिशा में एक सार्थक पहलकदमी है।

संदर्भ

1. सृजन और समीक्षा विविध आयाम–डॉ. रवि रंजन पृ.155
2. सृजन और समीक्षा विविध आयाम–डॉ. रवि रंजन पृ.155
3. सृजन और समीक्षा विविध आयाम–डॉ. रवि रंजन पृ.155
4. सृजन और समीक्षा विविध आयाम–डॉ. रवि रंजन पृ.156
5. सृजन और समीक्षा विविध आयाम–डॉ. रवि रंजन पृ.158
6. सृजन और समीक्षा विविध आयाम–डॉ. रवि रंजन पृ.158
7. सृजन और समीक्षा विविध आयाम–डॉ. रवि रंजन पृ.159
8. सृजन और समीक्षा विविध आयाम–डॉ. रवि रंजन पृ.160